आकुल अंतर

बच्चन

सेंट्रल बुक डिपो
इलाहाबाद

प्रकाशक
सेंट्रल बुकडिपो
इलाहाबाद

पहला संस्करण—जनवरी, १९४३
दूसरा संस्करण—मई, १९४४
तीसरा संस्करण—अप्रैल, १९४६

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

आकुल अंतर

गुरुवर पंडित अमरनाथ झा को

सादर सप्रेम समर्पित

विज्ञापन

बच्चन के प्रेमियों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हमने उनकी समस्त रचनाओं को प्रकाशित करने का भार अपने ऊपर ले लिया है।

हमारा प्रयत्न होगा कि हम उनकी नई-पुरानी सभी पुस्तकों को सुरुचिपूर्ण आकार-प्रकार देकर आपके सामने उपस्थित करें।

'आकुल अंतर' का तीसरा संस्करण आपके आगे है। हमें आशा है आपको पसंद आएगा। शीघ्र ही उनकी अन्य अप्राप्य रचनाएँ भी नवीन संस्करणों में हम आपके सामने रख सकेंगे, कुछ नवीन रचनाएँ भी।

हम आपके सहयोग के प्रार्थी हैं।

प्रकाशक

सूची

आकुल अंतर के गीत :— पृष्ठ संख्या

आकुल अंतरके गीत :— पृष्ठ संख्या

एक

(१)

लहर सागर का नहीं श्रृंगार,
उसकी विकलता है;
अनिल अंबर का नहीं खिलवार,
उसकी विकलता है;
विविध रूपों में हुआ साकार,
रंगों से सुरंजित,
मृत्तिका का यह नहीं संसार
उसकी विकलता है।

(२)

गंध कलिका का नहीं उद्‌गार,
उसकी विकलता है;
फूल मधुवन का नहीं गलहार,
उसकी विकलता है;
कोकिला का कौन-सा व्यवहार
ऋतुपति को न भाया ?
कूक कोयल की नहीं मनुहार,
उसकी विकलता है।

(३)

गान गायक का नहीं व्यापार,
उसकी विकलता है;
राग वीणा की नहीं झंकार,
उसकी विकलता है;
भावनाओं का मधुर आधार
साँसों से विनिर्मित,
गीत कवि-उर का नहीं उपहार,
उसकी विकलता है।

दो

मेरे साथ अत्याचार।
प्यालियाँ अगणित रसों की
सामने रख राह रोकी,
पहुँचने दी अधर तक बस
आँसुओं की धार।
मेरे साथ अत्याचार।

भावना अगणित हृदय में,
कामना अगणित हृदय में,
आह को ही बस निकलने
का दिया अधिकार।
मेरे साथ अत्याचार।

हर नहीं तुमने लिया क्या,
तज नहीं मैंने दिया क्या,
हाय, मेरी विपुल निधि का
गीत बस प्रतिकार।
मेरे साथ अत्याचार।

तीन

बदला ले लो, सुख की घड़ियो !
सौ-सौ तीखे काँटे आए
फिर-फिर चुभने तन में मेरे !
था ज्ञात मुझे यह होना है
क्षण-भंगुर स्वप्निल फुलझड़ियो !
बदला ले लो सुख की घड़ियो !

उस दिन सपनों की झाँकी में
मैं क्षण भर को मुसकाया था,
मत टूटो अब तुम युग-युग तक,
हे खारे आँसू की लड़ियो !
बदला ले लो सुख की घड़ियो !

मैं कंचन की ज़ंजीर पहन
क्षण भर सपने में नाचा था,
अधिकार, सदा को तुम जकड़ो
मुझको लोहे की हथकड़ियो !
बदला ले लो सुख की घड़ियो !

चार

कैसे आँसू नयन सँभाले।
मेरी हर आशा पर पानी,
रोना दुर्बलता, नादानी,
उमड़े दिल के आगे पलकें,
कैसे बाँध बनालें।
कैसे आँसू नयन सँभाले।

समझा था जिसने मुझको सब,
समझाने को वह न रही अब,
समझाते मुझको हैं मुझको
कुछ न समझनेवाले।
कैसे आँसू नयन सँभाले।

मन में था जीवन में आते
वे, जो दुर्बलता दुलराते,
मिले मुझे दुर्बलताओं से
लाभ उठाने वाले।
कैसे आँसू नयन सँभाले।

पाँच

आज आहत मान, आहत प्राण !
कल जिसे समझा कि मेरा
मुकुर - बिंबित रूप,
आज वह ऐसा, कभी की
हो न ज्यों पहचान ।
आज आहत मान, आहत प्राण !

'मैं तुझे देता रहा हूँ
प्यार का उपहार',
'मूर्ख मैं तुझको बनाती
थी, निपट नादान ।'
आज आहत मान, आहत प्राण !

चोट दुनिया-दैव की सह
गर्व था, मैं बीर,
हाय, ओड़े थे न मैंने
शब्द - बेधी - बाण ।
आज आहत मान, आहत प्राण !

छः

जानकर अनजान बन जा।
पूछ मत आराध्य कैसा,
जबकि पूजा-भाव उमड़ा;
मृत्तिका के पिंड से कहदे
कि तू भगवान बन जा।
जानकर अनजान बन जा।

आरती बनकर जला तू,
पथ मिला, मिट्टी सिधारी,
कल्पना की वंचना से
सत्य से अज्ञान बन जा।
जानकर अनजान बन जा।

किंतु दिल की आग का
संसार में उपहास कब तक ?
किंतु होना, हाय, अपने आप
हतविश्वास कब तक ?
अग्नि को अंदर छिपाकर,
हे हृदय, पाषाण बन जा।
जानकर अनजान बन जा।

सात

(१)

कैसे भेंट तुम्हारी ले लूँ ?

क्या तुम लाई हो चितवन में,
क्या तुम लाई हो चुंबन में,
अपने कर में क्या तुम लाईं,
क्या तुम लाई अपने मन में,
क्या तुम नूतन लाई जो मैं
फिर से बंधन झेलूँ ?
कैसे भेंट तुम्हारी ले लूँ ?

(२)

अश्रु पुराने, आह पुरानी,
युग बाहों की चाह पुरानी,
उथले मन की थाह पुरानी,
वही प्रणय की राह पुरानी,
अर्घ्य प्रणय का कैसे अपनी
अंतर्ज्वाला में लूँ ?
कैसे भेंट तुम्हारी ले लूँ ?

(३)

खेल चुका मिट्टी के घर से,
खेल चुका मैं सिंधु लहर से,
नभ के सूनेपन से खेला,
खेला झंझा के झर-झर से;
तुम में आग नहीं है तब क्या
संग तुम्हारे खेलूँ ?
कैसे भेंट तुम्हारी ले लूँ ?

आठ

(१)

मैंने ऐसी दुनिया जानी।
इस जगती के रंगमंच पर
आऊँ मैं कैसे, क्या बनकर,
जाऊँ मैं कैसे, क्या बनकर—
सोचा, यत्न किया भी जी भर,
किंतु कराती नियति नटी है
मुझसे बस मनमानी।
मैंने ऐसी दुनिया जानी।

(२)

आज मिले दो यही प्रणय है,
दो देहों में एक हृदय है,
एक प्राण है, एक श्वास है,
भूल गया मैं यह अभिनय है;
सबसे बढ़कर मेरे जीवन
की थी यह नादानी।
मैंने ऐसी दुनिया जानी।

(३)

यह लो मेरा क्रीड़ास्थल है,
यह लो मेरा रंग-महल है,
यह लो अंतरहित मरुथल है,
ज्ञात नहीं क्या अगले पल है,
निश्चित पटाक्षेप की घटिका
भी तो है अनजानी।
मैंने ऐसी दुनिया जानी।

नौ

(१)

क्षीण कितना शब्द का आधार !
मौन तुम थीं, मौन मैं था, मौन जग था,
तुम अलग थीं और मैं तुमसे अलग था,
जोड़-से हमको गए थे शब्द के कुछ तार।
क्षीण कितना शब्द का आधार !

(२)

शब्दमय तुम और मैं जग शब्द से भर पूर,
दूर तुम हो और मैं हूँ आज तुमसे दूर,
अब हमारे बीच में है शब्द की दीवार।
क्षीण कितना शब्द का आधार !

(३)

कौन आया और किसके पास कितना,
मैं करूँ अब शब्द पर विश्वास कितना,
कर रहे थे जो हमारे बीच छल-व्यापार !
क्षीण कितना शब्द का आधार !

दस

मैं अपने से पूछा करता।
निर्मल तन, निर्मल मनवाली,
सीधी-सादी, भोली-भाली,
वह एक अकेली मेरी थी,
दुनिया क्यों अपनी लगती थी ?
मैं अपने से पूछा करता।

तन था जगती का सत्य सघन,
मन था जगती का स्वप्न गहन,
सुख-दुख, जगती का हास-रुदन;
मैंनें था व्यक्ति जिसे समझा,
क्या उसमें सारी जगती थी ?
मैं अपने से पूछा करता।

वह चली गई, जग में क्या कम,
दुनिया रहती दुनिया हरदम,
मैं उसको धोखा देता था
अथवा वह मुझको ठगती थी ?
मैं अपने से पूछा करता।

ग्यारह

(१)

अरे है वह अंतस्तल कहाँ ?
अपने जीवन का शुभ-सुंदर
बाँटा करता हूँ मैं घर-घर,
एक जगह ऐसी भी होती,
निःसंकोच विकार-विकृति निज
सब रख सकता जहाँ ।
अरे है वह अंतस्तल कहाँ ?

(२)

करते कितने सर-सरि-निर्झर
मुखरित मेरे आँसू का स्वर,
एक उदधि ऐसा भी होता,
होता गिरकर लीन सदा को
नयनों का जल जहाँ।
अरे है वह अंतस्तल कहाँ ?

(३)

जगती के विस्तृत कानन में
कहाँ नहीं भय औ' किस क्षण में ?
एक विंदु ऐसा भी होता,
जहाँ पहुँचकर कह सकता मैं,
'सदा सुरक्षित यहाँ'।
अरे है वह अंतस्तल कहाँ ?

बारह

(१)

अरे है वह वक्षस्थल कहाँ ?
ऊँची ग्रीवा रख आजीवन
चलने का लेकर के भी प्रण
मन मेरा खोजा करता है
क्षण भर को वह ठौर
झुका दूँ गर्दन अपनी जहाँ ।
अरे है वह वक्षस्थल कहाँ ?

(२)

ऊँचा मस्तक रख आजीवन
चलने का लेकर के भी प्रण
मन मेरा खोजा करता है
क्षण भर को वह ठौर
टिका दूँ मत्था अपना जहाँ ।
अरे है वह वक्षस्थल कहाँ ?

(३)

कभी करूँगा नहीं पलायन
जीवन से, लेकर के भी प्रण
मन मेरा खोजा करता है
क्षण भर को वह ठौर
छिपा लूँ अपना शीश जहाँ ।
अरे है वह वक्षस्थल कहाँ ?

तेरह

(१)

अरे है वह शरणस्थल कहाँ ?

जीवन एक समर है सचमुच,
पर इसके अतिरिक्त बहुत कुछ,
योद्धा भी खोजा करता है
कुछ पल को वह ठौर
युद्ध की प्रतिध्वनि नहीं जहाँ।
अरे है वह शरणस्थल कहाँ ?

(२)

जीवन एक सफ़र है सचमुच,
पर इसके अतिरिक्त बहुत कुछ,
यात्री भी खोजा करता है
कुछ पल को वह ठौर
प्रगति यात्रा की नहीं जहाँ।
अरे है वह शरणस्थल कहाँ ?

(३)

जीवन एक गीत है सचमुच,
पर इसके अतिरिक्त बहुत कुछ,
गायक भी खोजा करता है
कुछ पल को वह ठौर
मूकता भंग न होती जहाँ।
अरे है वह शरणस्थल कहाँ ?

चौदह

क्या है मेरी बारी में।
जिसे सींचना था मधुजल से
सींचा खारे पानी से,
नहीं उपजता कुछ भी ऐसी
विधि से जीवन-क्यारी में।
क्या है मेरी बारी में।

आँसू - जल से सींच-सींचकर
बेलि विवश हो बोता हूँ,
स्रष्टा का क्या अर्थ छिपा है
मेरी इस लाचारी में।
क्या है मेरी बारी में।

टूट पड़े मधुऋतु मधुवन में
कल ही तो क्या मेरा है,
जीवन बीत गया सब मेरा
जीने की तैयारी में।
क्या है मेरी बारी में।

पंद्रह

मैं समय बर्बाद करता ?
प्रायशः हित-मित्र मेरे
पास आ संध्या-सबेरे,
हो परम गंभीर कहते--
मैं समय बर्बाद करता।
मैं समय बर्बाद करता ?

बात कुछ विपरीत ही है,
सूझता उनको नहीं है,
जो कि कहते आँख रहते--
मैं समय बर्बाद करता!
मैं समय बर्बाद करता ?

काश मुझमें शक्ति होती
नष्ट कर सकता समय को,
औ' समय के बंधनों से
मुक्त कर सकता हृदय को;
भर गया दिल ज़ुल्म सहते--
मैं समय बर्बाद करता।
मैं समय बर्बाद करता।

सोलह

आज ही आना तुम्हें था ?
आज मैं पहले पहल कुछ
घूंट मधु पीने चला था,
पास मेरे आज ही क्यों
विश्व आ जाना तुम्हें था।
आज ही आना तुम्हें था ?

एक युग से पी रहा था
रक्त मैं अपने हृदय का,
किंतु मद्यप रूप में ही
क्यों मुझे पाना तुम्हें था।
आज ही आना तुम्हें था ?

तुम बड़े नाज़ुक समय में
मानवों को हो पकड़ते,
हे नियति के व्यंग, मैंने
क्यों न पहचाना तुम्हें था।
आज ही आना तुम्हें था ?

सत्रह

एकाकीपन भी तो न मिला।
मैंने समझा था संगरहित
जीवन के पथ पर जाता हूँ,
मेरे प्रति पद की गति-विधि को
जग देख रहा था खोल नयन।
एकाकीपन भी तो न मिला।

मैं अपने कमरे के अंदर
कुछ अपने मन की करता था,
दर - दीवारें चुपके - चुपके
देती थीं जग को आमंत्रण।
एकाकीपन भी तो न मिला।

मैं अपने मानस के भीतर
था व्यस्त मनन में, चिंतन में,
साँसें जग से कह आती थीं
मेरे अंतर का द्वंद्व - दहन।
एकाकीपन भी तो न मिला।

अठारह

नई यह कोई बात नहीं।
कल केवल मिट्टी की ढेरी,
आज 'महत्ता' इतनी मेरी,
जगह - जगह मेरे जीवन की
जाती बात कही।
नई यह कोई बात नहीं।

सत्य कहे या झूठ बनाए,
भला-बुरा जो जी में आए,
सुनते हैं क्यों लोग—पहेली
मेरे लिए रही।
नई यह कोई बात नहीं।

कवि था कविता से था नाता,
मुझको संग उसी का भाता,
किंतु भाग्य ही कुछ ऐसा है,
फेर नहीं मैं उसको पाता;
जहाँ कहीं मैं गया कहानी
मेरे साथ रही।
नई यह कोई बात नहीं।

उन्नीस

तिल में किसने ताड़ छिपाया ?
छिपा हुआ था जो कोने में,
शंका थी जिसके होने में,
वह बादल का टुकड़ा फैला,
फैल समग्र गगन में छाया ।
तिल में किसने ताड़ छिपाया ?

पलकों के सहसा गिरने पर
धीमे से जो बिंदु गए झर,
मैंने कब समझा था उनके
अंदर सारा सिंधु समाया ।
तिल में किसने ताड़ छिपाया ?

कर बैठा था जो अनजाने,
या कि करा दी थी स्रष्टा ने,
उस ग़लती ने मेरे सारे
जीवन का इतिहास बनाया ।
तिल में किसने ताड़ छिपाया ?

बीस

कवि तू जा व्यथा यह झेल।
वेदना आई शरण में
गीत ले गीले नयन में,
क्या इसे निज द्वार से तू
आज देगा ठेल।
कवि तू जा व्यथा यह झेल।

पोंछ इसके अश्रुकण को,
अश्रुकण - सिंचित वदन को,
यह दुखी कब चाहती है
कलित क्रीड़ा - केलि।
कवि तू जा व्यथा यह झेल।

है कहीं कोई न इसका,
यह पकड़ ले हाथ जिसका,
और तू भी आज किसका,
है किसी संयोग से ही
हो गया यह मेल।
कवि तू जा व्यथा यह झेल।

इक्कीस

मुझको भी संसार मिला है।
जिन्हें पुतलियाँ प्रति पल सेतीं,
जिन पर पलकें पहरा देतीं,
ऐसी मोती की लड़ियों का
मुझको भी उपहार मिला है।
मुझको भी संसार मिला है।

मेरे सूनेपन के अंदर
हैं कितने मुझ-से नारी-नर !
जिन्हें सुखों ने ठुकराया है
मुझको उनका प्यार मिला है।
मुझको भी संसार मिला है।

इससे सुंदर तन है किसका ?
इससे सुंदर मन है किसका ?
मैं कवि हूँ मुझको वाणी के
तन-मन पर अधिकार मिला है।
मुझको भी संसार मिला है।

बाईस

(१)

वह नभ कंपनकारी समीर,

जिसने बादल की चादर को
दो झटके में कर तार-तार,
दृढ़ गिरि शृंगों की शिला हिला,
डाले अनगिन तरुवर उखाड़;
होता समाप्त अब वह समीर
कलि की मुसकानों पर मलीन !
वह नभ कंपनकारी समीर।

(२)

वह जल प्रवाह उद्धत-अधीर,
जिसने क्षिति के वक्षस्थल को
निज तेज धार से दिया चीर,
कर दिए अनगिनत नगर-ग्राम-
घर बेनिशान कर मग्न-नीर;
होता समाप्त अब वह प्रवाह
तट-शिला-खंड पर क्षीण-क्षीण !
वह जल प्रवाह उद्धत-अधीर।

(३)

मेरे मानस की महा पीर,
जो चली विधाता के सिर पर
गिरने को बनकर वज्र शाप,
जो चली भस्म कर देने को
यह निखिल सृष्टि बन प्रलय ताप;
होती समाप्त अब वही पीर,
लघु-लघु गीतों में शक्तिहीन !
मेरे मानस की महापीर।

तेईस

तूने अभी नहीं दुख पाए।
शूल चुभा, तू चिल्लाता है,
पाँव सिद्ध तब कहलाता है,
इतने शूल चुभें शूलों के
चुभने का पग पता न पाए।
तूने अभी नहीं दुख पाए।

बीते सुख की याद सताती ?
अभी बहुत कोमल है छाती,
दुख तो वह है जिसे सहन कर
पत्थर की छाती हो जाए।
तूने अभी नहीं दुख पाए।

कंठ करुण स्वर में गाता है,
नयनों में घन घिर आता है,
पन्ना-पन्ना रँग जाता है
लेकिन, प्यारे, दुख तो वह है,
हाथ न डोले, कंठ न बोले,
नयन मुँदे हों या पथराए।
तूने अभी नहीं दुख पाए।

चौबीस

ठहरा-सा लगता है जीवन।

एक ही तरह से घटनाएँ
नयनों के आगे आती हैं,
एक ही तरह के भावों को
दिल के अंदर उपजाती हैं,
एक ही तरह से आह उठा,
आँसू बरसा,
हल्का हो जाया करता मन।
ठहरा सा लगता है जीवन।

एक ही तरह की तान कान
के अंदर गूँजा करती है,
एक ही तरह की पंक्ति पृष्ठ
के ऊपर नित्य उतरती है,
एक ही तरह के गीत बना,
सूने में गा,
हल्का हो जाया करता मन।
ठहरा-सा लगता है जीवन।

पच्चीस

हाय, क्या जीवन यही था।
एक बिजली की झलक में
स्वप्न औ' रस-रूप दीखा,
हाथ फैले तो मुझे निज
हाथ भी दिखता नहीं था।
हाय, क्या जीवन यही था।

एक झोंके ने गगन के
तारकों में जा बिठाया,
मुट्ठियाँ खोलीं, सिवा कुछ
कंकड़ों के कुछ नहीं था।
हाय, क्या जीवन यही था।

मैं पुलक उठता न सुख से
दुःख से तो क्षुब्ध होता,
इस तरह निर्लिप्त होना
लक्ष्य तो मेरा नहीं था।
हाय, क्या जीवन यही था।

छब्बीस

(१)

लो दिन बीता, लो रात गई,

सूरज ढलकर पच्छिम पहुँचा,
डूबा, संध्या आई, छाई,
सौ संध्या-सी वह संध्या थी,
क्यों उठते-उठते सोचा था,
दिन में होगी कुछ बात नई ।
लो दिन बीता, लो रात गई ।

(२)

धीमे - धीमे तारे निकले,
धीरे - धीरे नभ में फैले,
सौ रजनी-सी वह रजनी थी,
क्यों संध्या को यह सोचा था,
निशि में होगी कुछ बात नई।
लो दिन बीता, लो रात गई।

(३)

चिड़ियाँ चहकी, कलियाँ महकी,
पूरब से फिर सूरज निकला,
जैसे होती थी सुबह हुई,
क्यों सोते-सोते सोचा था,
होगी प्रातः कुछ बात नई।
लो दिन बीता, लो रात गई।

सत्ताईस

छल गया जीवन मुझे भी।
देखने में था अमृत वह,
हाथ मे आ मधु गया रह
और जिह्वा पर हलाहल!
विश्व का वचन मुझे भी।
छल गया जीवन मुझे भी।

गीत से जगती न झूमी,
चीख से दुनिया न घूमी,
हाय, लगते एक से अब
गान औ' क्रदन मुझे भी।
छल गया जीवन मुझे भी।

जो द्रवित होता न दुख से,
जो स्रवित होता न सुख से,
श्वास-क्रम से किंतु शापित
कर गया पाहन मुझे भी।
छल गया जीवन मुझे भी।

अट्ठाईस

(१)

वह साल गया, यह साल चला ।
मित्रों ने वर्ष - बधाई दी,
मित्रों को हर्ष - बधाई दी,
उत्तर भेजा, उत्तर आया,
'नूतन प्रकाश', 'नूतन प्रभात'
इत्यादि शब्द कुछ दिन गूँजे,
फिर मंद पड़े, फिर लुप्त हुए,
फिर अपनी गति से काल चला;
वह साल गया, यह साल चला ।

(२)

आनेवाला 'कल' 'आज' हुआ,
जो 'आज' हुआ 'कल' कहलाया,
पृथ्वी पर नाचे रात-दिवस,
नभ में नाचे रवि - शशि - तारे,
निश्चित गति रखकर बेचारे।
यह मास गया, वह मास गया,
ऋतु-ऋतु बदली, मौसम बदला;
वह साल गया, यह साल चला।

(३)

झंझा-सनसन, घन घन-गर्जन,
कोकिल - कूजन, केकी - क्रंदन,
अख़बारी दुनियाँ की हलचल,
संग्राम - संधि, दंगा - फ़साद,
व्याख्यान, विविध चर्चा-विवाद,
हम-तुम यह कहकर भूल गए,
यह बुरा हुआ, यह हुआ भला;
वह साल गया, यह साल चला।

उंतीस

यदि जीवन पुनः बना पाता ।
मैं करता चकनाचूर न जग का
दुख-संकटमय यंत्र पकड़,
बस कुछ कण के परिवर्तन से
क्षण में क्या से क्या हो जाता ।
यदि जीवन पुनः बना पाता ।

मैं करता टुकड़े-टुकड़े क्यों
युग-युग की चिर संबद्ध लड़ी,
केवल कुछ पल को अदल-बदल
जीवन क्या से क्या हो जाता ।
यदि जीवन पुनः बना पाता ।

जो सपना है वह सच होता,
क्या निश्चय होता तोष मुझे ?
हो सकता है ले वे सपने
मैं और अधिक ही पछताता ।
यदि जीवन पुनः बना पाता ।

तीस

(१)

स्रष्टा भी यह कहता होगा
हो अपनी कृति से असंतुष्ट,
यह पहले ही सा हुआ प्रलय,
यह पहले ही सी हुई सृष्टि ।

(२)

इस बार किया था जब मैंने
अपनी अपूर्ण रचना का क्षय,
सब दोष हटा जग रचने का
मेरे मन में था दृढ़ निश्चय ।

(३)

लेकिन, जब जग में गुण जागे,
तब संग-संग में दोष जगा,
जब पुण्य जगा, तब पाप जगा,
जब राग जगा, तब रोष जगा ।

(४)

जब ज्ञान जगा, अज्ञान जगा,
पशु जागा, जब मानव जागा,
जब न्याय जगा, अन्याय जगा,
जब देव जगा, दानव जागा ।

(५)

जग संघर्षों का क्षेत्र बना,
संग्राम छिड़ा, संहार बढ़ा,
कोई जीता, कोई हारा,
मरता-कटता संसार बढ़ा ।

(६)

मेरी पिछली रचनाओं का
जैसे विकास औ' ह्रास हुआ,
इस मेरी नूतन रचना का
वैसा ही तो इतिहास हुआ।

(७)

यह मिट्टी की हठधर्मी है
जो फिर-फिर मुझको छलती है,
सौ बार मिटे, सौ बार बने
अपना गुण नहीं बदलती है।

(८)

यह सृष्टि नष्ट कर नवल सृष्टि
रचने का यदि मैं करूँ कष्ट,
फिर मुझे यही कहना होगा
अपनी कृति से हो असंतुष्ट,
'फिर उसी तरह से हुआ प्रलय,
फिर उसी तरह से हुई सृष्टि।'

इकतीस

तुम भी तो मानो लाचारी।

सर्व शक्तिमय थे तुम तब तक,
एक अकेले थे तुम जब तक,
किंतु विभक्त हुई कण-कण में,
अब वह शक्ति तुम्हारी।
तुम भी तो मानो लाचारी।

गुस्सा कल तक तुम पर आता,
आज तरस मैं तुम पर खाता,
साधक अगणित आँगन में हैं
सीमित भेंट तुम्हारी।
तुम भी तो मानो लाचारी।

पाना-वाना नहीं कभी है,
ज्ञात मुझे यह बात सभी है,
पर मुझको संतोष तभी है,
दे न सको तुम किंतु बनूँ मैं
पाने का अधिकारी।
तुम भी तो मानो लाचारी।

बत्तीस

मिट्टी से व्यर्थ लड़ाई है।

नीचे रहती है पावों के,
सिर चढ़ती राजा-रावों के,
अंबर को भी ढक लेने की
यह आज शपथ कर आई है।
मिट्टी से व्यर्थ लड़ाई है।

सौ बार हटाई जाती है,
फिर आ अधिकार जमाती है,
हा हंत, विजय यह पाती है,
कोई ऐसा रँग-रूप नहीं
जिस पर न अंत को छाई है।
मिट्टी से व्यर्थ लड़ाई है।

सबको मिट्टीमय कर देगी,
सबको निज में लय कर लेगी,
लो अमर पंक्तियों पर मेरी
यह निष्प्रयास चढ़ आई है।
मिट्टी से व्यर्थ लड़ाई है।

तैंतीस

आज पागल हो गई है रात।

हँस पड़ी विद्युच्छटा में,
रो पड़ी रिमझिम घटा में,
अभी भरती आह, करती अभी वज्राघात।
आज पागल हो गई है रात।

एक दिन मैं भी हँसा था,
अश्रु - धारा में फँसा था,
आह उर में थी भरी, था क्रोध-कंपित गात।
आज पागल हो गई है रात।

योग्य हँसने के यहाँ क्या,
योग्य रोने के यहाँ क्या,
—क्रुद्ध होने के, यहाँ क्या,
—बुद्धि खोने के, यहाँ क्या,
व्यर्थ दोनों हैं मुझे हँस-रो हुआ यह ज्ञात।
आज पागल हो गई है रात।

चौंतीस

दोनों चित्र सामने मेरे ।

पहला :

सिर पर बाल घने, घुँघराले,
काले, कड़े, बड़े, बिखरे-से,
मस्ती, आजादी, बेफ़िकरी,
बेख़बरी के हैं संदेसे ।

माथा उठा हुआ ऊपर को,
भौंहों में कुछ टेढ़ापन है,
दुनिया को है एक चुनौती,
कभी नहीं झुकने का प्रण है ।

नयनों में छाया-प्रकाश की
आँख - मिचौनी छिड़ी परस्पर,
बेचैनी में, बेसबरी में
लुके छिपे हैं सपने सुंदर।

दूसरा

सिर पर बाल कढ़े कंघी से
तरतीबी से, चिकने काले,
जग की रूढ़ि - रीति ने जैसे
मेरे ऊपर फंदे डाले।

भौंहें झुकी हुई नीचे को,
माथे के ऊपर है रेखा,
अंकित किया जगत ने जैसे
मुझपर अपनी जय का लेखा।

नयनों के दो द्वार खुले हैं,
समय दे गया ऐसी दीक्षा,
स्वागत सबके लिए यहाँ पर,
नहीं किसी के लिए प्रतीक्षा।

पैंतीस

चुपके से चाँद निकलता है।

तरु - माला होती स्वच्छ प्रथम,
फिर आभा बढ़ती है थम-थम,
फिर सोने का चंदा नीचे से उठ ऊपर को चलता है।
चुपके से चाँद निकलता है।

सोना चाँदी हो जाता है,
जस्ता बनकर खो जाता है,
पल-पहले नभ के राजा का अब पता कहाँ पर चलता है ?
चुपके से चंदा ढलता है।

अरुणाभा, किरणों की माला,
रवि - रथ बारह घोड़ोंवाला,
बादल - बिजली औ' इंद्रधनुष,
तारक - दल, सुंदर शशिबाला,
कुछ काल सभी से मन बहला, आकाश सभी को छलता है।
वश नहीं किसी का चलता है।

छत्तीस

चाँद-सितारो, मिलकर गाओ !

आज अधर से अधर मिले हैं,
आज बाँह से बांह मिली,
आज हृदय से हृदय मिले हैं,
मन से मन की चाह मिली;
चाँद-सितारो, मिलकर गाओ !

चाँद-सितारे मिलकर बोले,
कितनी बार गगन के नीचे
प्रणय-मिलन व्यापार हुआ है,
कितनी बार धरा पर प्रेयसि-
प्रियतम का अभिसार हुआ है !
चाँद सितारे मिलकर बोले ।

चाँद - सितारो, मिलकर रोओ !
आज अधर से अधर अलग है,
आज बाँह से बाँह अलग,
आज हृदय से हृदय अलग है,
मन से मन की चाह अलग;
चाँद-सितारो मिलकर रोओ !

चाँद-सितारे मिलकर बोले,
कितनी बार गगन के नीचे
अटल प्रणय के बंधन टूटे,
कितनी बार धरा के ऊपर
प्रेयसि-प्रियतम के प्रण टूटे !
चाँद - सितारे मिलकर बोले ।

सैंतीस

(१)

मै था, मेरी मधुबाला थी,
अधरों में थी प्यास भरी,
नयनों में थे स्वप्न सुनहले,
कानों में थी स्वर लहरी;
सहसा एक सितारा बोला,
'यह न रहेगा बहुत दिनों तक ।'

(२)

मैं था औ' मेरी छाया थी,
अधरों पर था खारा पानी,
नयनों पर था तम का पर्दा,
कानों में थी कथा पुरानी;
सहसा एक सितारा बोला,
'यह न रहेगा बहुत दिनों तक !'

(३)

अनासक्त था मैं सुख-दुख से,
अधरों को कटु-मधु समान था,
नयनों को तम-ज्योति एक-सी,
कानों को सम रुदन-गान था;
सहसा एक सितारा बोला,
'यह न रहेगा बहुत दिनों तक !'

अड़तीस

(१)

इतने मत उन्मत्त बनो ।

जीवन मधुशाला से मधु पी
बनकर तन-मन-मतवाला,
गीत सुनाने लगा झूमकर
चूम-चूमकर मैं प्याला—

शीश हिलाकर दुनिया बोली,
. पृथ्वी पर हो चुका बहुत यह,
इतने मत उन्मत्त बनो ।

(२)

इतने मत संतप्त बनो।
जीवन मरघट पर अपने सब
अरमानों की कर होली,
चला राह में रोदन करता
चिता राख से भर झोली—
शीश हिलाकर दुनिया बोली,
पृथ्वी पर हो चुका बहुत यह,
इतने मत संतप्त बनो।

(३)

इतने मत उत्तप्त बनो।
मेरे प्रति अन्याय हुआ है
ज्ञात हुआ मुझको जिस क्षण,
करने लगा अग्नि-आनन हो
गुरु गर्जन गुरुतर तर्जन—
शीश हिलाकर दुनिया बोली,
पृथ्वी पर हो चुका बहुत यह
इतने मत उत्तप्त बनो।

उंतालीस

(१)

मेरा जीवन सबका साखी।

कितनी बार दिवस बीता है,
कितनी बार निशा बीती है,
कितनी बार तिमिर जीता है,
कितनी बार ज्योति जीती है!

मेरा जीवन सब का साखी।

(२)

कितनी बार सृष्टि जागी है,
कितनी बार प्रलय सोया है,
कितनी बार हँसा है जीवन,
कितनी बार विवश रोया है !

मेरा जीवन सब का साखी।

(३)

कितनी बार विश्व-घट मधु से
पूरित होकर तिक्त हुआ है,
कितनी बार भरा भावों से
कवि का मानस रिक्त हुआ है !

मेरा जीवन सब का साखी।

(४)

कितनी बार विश्व कटुता का
हुआ मधुरता में परिवर्तन,
कितनी बार मौन की गोदी
में सोया है कवि का गायन।

मेरा जीवन सब का साखी।

चालीस

(१)

तब तक समझूँ कैसे प्यार,
अधरों से जब तक न कराए
प्यारी उस मधुरस का पान,
जिसको पीकर मिटे सदा को
अपनी कटु संज्ञा का ज्ञान,
मिटे साथ में कटु संसार,
तब तक समझूँ कैसे प्यार।

(२)

तब तक समझूँ कैसे प्यार।
बाहों में जब तक न सुलाए
प्यारी, अंतरहित हो रात,
चाँद गया कब सूरज अया—
इनके जड़ क्रम से अज्ञात;
सेज चिता की साज-सँवार,
तब तक समझूँ कैसे प्यार।

(३)

तब तक समझूँ कैसे प्यार,
प्राणों में जब तक न मिलाए
प्यारी प्राणों की झंकार,
खंड-खंड हो तन की वीणा
स्वर उठ जाएँ तजकर तार,
स्वर-स्वर मिल हों एकाकार,
तब तक समझूँ कैसे प्यार।

इकतालीस

(१)

कौन मिलनातुर नहीं है ?
आक्षितिज फैली हुई मिट्टी
निरंतर पूछती है,
कब कटेगा, बोल, तेरी
चेतना का शाप,
और तू हो लीन मुझमें फिर बनेगा शांत ?
कौन मिलनातुर नहीं है ?

(२)

गगन की निर्बंध बहती वायु
प्रति पल पूछती है,
कब गिरेगी टूट तेरी
देह की दीवार,
और तू हो लीन मुझमें फिर बनेगा मुक्त ?
कौन मिलनातुर नहीं है ?

(३)

सर्व व्यापी विश्व का व्यक्तित्व
प्रति क्षण पूछता है,
कब मिटेगा बोल तेरा
अहं का अभिमान,
और तू हो लीन मुझमें फिर बनेगा पूर्ण ?
कौन मिलनातुर नहीं है ?

बयालीस

कभी, मन अपने को भी जाँच ।
नियति पुस्तिका के पन्नों पर,
मूँद न आँखें, भूल दिखाकर,
लिखा हाथ से अपने तूने
जो उसको भी बाँच ।
कभी, मन, अपने को भी जाँच ।

सोने का संसार दिखाकर,
दिया नियति ने कंकड़-पत्थर,
सही, सँजोया कंचन कहकर
तूने कितना काँच ?
कभी, मन, अपने को भी जाँच ।

जगा नियति ने भीषण ज्वाला,
तुझको उसके भीतर डाला,
ठीक, छिपी थी तेरे दिल के
अंदर कितनी आँच ?
कभी, मन, अपने को भी जाँच ।

तैंतालीस

(१)

यह वर्षा ऋतु की संध्या है,
मैं बरामदे में कुरसी पर
घिरा अँधेरे से बैठा हूँ
बँगले से स्विच ऑफ़ सभी कर,
उठे आज परवाने इतने
कुछ प्रकाश में करना दुष्कर,
नहीं कहीं जा भी सकता हूँ
होती बूँदा-बाँदी बाहर ।

(२)

उधर कोठरी है नौकर की
एक दीप उसमें बलता है,
सभी ओर से उसमें आकर
परवानों का दल जलता है,
ज्योति दिखाता ज्वाला देता
दिया पतिंगों को छलता है,
नहीं पतिंगों का दीपक के
ऊपर कोई वश चलता है।

(३)

है दिमाग़ में चक्कर करती
एक फ़ारसी की रूबाई,
शायद यह इक़बाल-रचित है
किसी मित्र ने कभी सुनाई;
मेरे मनोभाव की इसके
अंदर है कुछ-कुछ परछाई।

(४)

'दिल दीवाना, दिल परवाना,
तज दीपक लौ पर मँडराना,

कब सीखेगा पाँव बढ़ाना
उस पथ पर जो है मर्दाना।
ज्वाला है ख़ुद तेरे अंदर,
जलना उसमें सीख निरंतर,
उस ज्वाला में जल क्या पाना
जो बेगाना, जो बेगाना।'[१]

---

[१] दिला नादानिए परवाना ताके,
नगीरी शेवए मर्दाना ताके,
यके ख़ुद राज़ सोज़ें ख़ेशतन सोज,
तवाफ़े आतिशे बेगाना ताके।

चौवालीस

(१)

यह दीपक है, यह परवाना ।
ज्वाल जगी है, उसके आगे
जलनेवालों का जमघट है,
भूल करे मत कोई कहकर,
यह परवानों का मरघट है;
एक नही है दोनों मरकर
जलना औ' जलकर मर जाना ।
यह दीपक है, यह परवाना ।

(२)

इनकी तुलना करने को कुछ
देख न, हे मन, अपने अंदर,
वहाँ चिता चिंता की जलती,
जलता है तू शव-सा बनकर;
यहाँ प्रणय की होली में है
खेल जलाना या जल जाना।
यह दीपक है, यह परवाना।

(३)

लेनी पड़े अगर ज्वाला ही
तुझको जीवन में, मेरे मन,
तो न मृतक ज्वाला में जल तू
कर सजीव में प्राण समर्पण;
चिता-दग्ध होने से बेहतर
है होली में प्राण गँवाना।
यह दीपक है, यह परवाना।

पैंतालीस

वह तितली है, यह बिस्तुइया ।
यह काली कुरूप है कितनी !
वह सुंदर सुरूप है कितनी !
गति से और भयंकर लगती
यह, उसका है रूप निखरता ।
वह तितली है, यह बिस्तुइया ।

बिस्तुइया के मुँह में तितली,
चीख हृदय से मेरे निकली,
प्रकृति पुरी में यह अनीति क्यों,
बैठा-बैठा विस्मय करता ।
वह तितली थी, यह बिस्तुइया ।

इस अंधेर नगर के अंदर
——दोनों में ही सत्य बराबर,
बिस्तुइया की उदर-क्षुधा औ'
तितली के पर की सुंदरता ।
वह तितली थी, यह बिस्तुइया ।

छियालीस

(१)

क्या तुझ तक ही जीवन समाप्त ?

तेरे जीवन की क्यारी में
कुछ उगा नहीं, मैंने माना,
पर सारी दुनिया मरुथल है
बतला तूने कैसे जाना ?

तेरे जीवन की सीमा तक
क्या जगती का आँगन समाप्त ?
क्या तुझ तक ही जीवन समाप्त ?

(२)

तेरे जीवन की क्यारी में
फल-फूल उगे, मैंने माना,
पर सारी दुनिया मधुवन है
बतला तूने कैसे जाना ?

तेरे जीवन की सीमा तक
क्या जगती का मधुवन समाप्त ?
क्या तुझ तक ही जीवन समाप्त ?

(३)

जब तू अपने दुख में रोता,
दुनिया सुख से गा सकती है,
जब तू अपने सुख में गाता,
वह दुख से चिल्ला सकती है;

तेरे प्राणों के स्पंदन तक
क्या जगती का स्पंदन समाप्त ?
क्या तुझ तक ही जीवन समाप्त ?

सैंतालीस

कितना कुछ सह लेता यह मन !
कितना दुख-संकट आ गिरता
अनदेखी - जानी दुनिया से,
मानव सब कुछ सह लेता है
कह पिछले कर्मों का बंधन ।
कितना कुछ सह लेता यह मन !

कितना दुख-संकट आ गिरता
इस देखी - जानी दुनिया से,
मानव यह कह सह लेता है
दुख संकट जीवन का शिक्षण ।
कितना कुछ सह लेता यह मन !

कितना दुख संकट आ गिरता
मानव पर अपने हाथों से,
दुनिया न कहीं उपहास करे,
सब कुछ करता है मौन सहन ।
कितना कुछ सह लेता यह मन !

अड़तालीस

हृदय सोच यह बात भर गया !
उर में चुभनेवाली पीड़ा,
गीत-गंध में कितना अंतर,
कवि की आहों में था जादू
काँटा बनकर फूल भर गया।
हृदय सोच यह बात भर गया !

यदि अपने दुख में चिल्लाता,
गगन काँपता, धरती फटती,
एक गीत से कंठ रूँधकर
मानव सब कुछ सहन कर गया।
हृदय सोच यह बात भर गया !

कुछ गीतों को लिख सकते हैं,
गा सकते हैं कुछ गीतों को,
दोनों से था वंचित जो वह
जिया किस तरह और मर गया।
हृदय सोच यह बात भर गया !

उंचास

करुण अति मानव का रोदन।
ताज, चीन-दीवार दीर्घ जिन
हाथों के उपहार,
वही सँभाल नहीं पाते हैं
अपने सिर का भार!
गड़े जाते भू में लोचन!
देव-देश औ' परी-पुरी जिन
नयनों के वरदान,
जिनमें फैले, फूले, भूले
कितने स्वप्न महान,
गिराते खारे लघु जल कण!
जो मस्तिष्क खोज लेता है
अर्थ गुप्त से गुप्त,
स्रष्टा, सृष्टि और सर्जन का
कहाँ हो गया लुप्त?
नहीं धरता है धीरज मन!
करुण अति मानव का रोदन।

पचास

(१)

अकेलेपन का बल पहचान।
शब्द कहाँ जो तुझको, टोके,
हाथ कहाँ जो तुझको रोके,
राह वही है, दिशा वही, तू करे जिधर प्रस्थान।
अकेलेपन का बल पहचान।

(२)

जब तू चाहे तब मुसकाए,
जब चाहे तब अश्रु बहाए,
राग वही तू जिसमें गाना चाहे अपना गान।
अकेलेपन का बल पहचान।

(३)

तन-मन अपना, जीवन अपना,
अपना ही जीवन का सपना,
जहाँ और जब चाहे कर दे तू सब कुछ बलिदान।
अकेलेपन का बल पहचान।

इक्यावन

(१)

क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी ?
क्या करूँ ?

मैं दुखी जब-जब हुआ
संवेदना तुमने दिखाई,
मैं कृतज्ञ हुआ हमेशा,
रीति दोनों ने निभाई,
किंतु इस आभार का अब
हो उठा है बोझ भारी;

क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी ?
क्या करूँ ?

(२)

एक भी उच्छ्वास मेरा
हो सका किस दिन तुम्हारा ?
उस नयन से बह सकी कब
इस नयन की अश्रु-धारा ?
सत्य को मूँदे रहेगी
शब्द की कब तक पिटारी ?
क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी ?
क्या करूँ ?

(३)

कौन है जो दूसरे को
दु:ख अपना दे सकेगा ?
कौन है जो दूसरे से
दु:ख उसका ले सकेगा ?
क्यों हमारे बीच धोखे
का रहे व्यापार जारी ?
क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी ?
क्या करूँ ?

(४)

क्यों न हम लें मान हम हैं
चल रहे ऐसी डगर पर,
हर पथिक जिसपर अकेला,
दुख नहीं बँटते परस्पर,
दूसरों की वेदना में
वेदना जो है दिखाता,
वेदना से मुक्ति का निज
हर्ष केवल वह छिपाता;
तुम दुखी हो तो सुखी मैं
विश्व का अभिशाप भारी !
क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी ?
क्या करूँ ?

बावन

(१)

उनके प्रति मेरा, धन्यवाद,

कहते थे मेरी नादानी
जो मेरे रोने-धोने को,
कहते थे मेरी नासमझी
जो मेरे धीरज खोने को,

मेरा अपने दुख के ऊपर
उठने का व्रत उनका प्रसाद;
उनके प्रति मेरा धन्यवाद।

(२)

जो क्षमा नहीं कर सकते थे
मेरी कुछ दुर्बलताओं को,
जो सदा देखते रहते थे,
उनमें अपने ही दावों को,

मेरा दुर्बलता के ऊपर
उठने का व्रत उनका प्रसाद;
उनके प्रति मेरा धन्यवाद।

(३)

कादरपन देखा करते थे
जो मेरी करुण कहानी में,
बंध्यापन देखा करते थे
जो मेरी विह्वल वाणी में,

मेरा नूतन स्वर में उठकर
गाने का व्रत उनका प्रसाद;
उनके प्रति मेरा धन्यवाद!

तिरपन

(१)

जीवन का यह पृष्ठ पलट, मन ।
इसपर जो थी लिखी कहानी,
वह अब तुझको याद ज़बानी,
बारबार पढ़कर क्यों इसको
व्यर्थ गँवाता जीवन के क्षण ।
जीवन का यह पृष्ठ पलट, मन ।

(२)

इसपर लिखा हुआ हर अक्षर
जमा हुआ है बनकर 'अक्षर,'
किंतु प्रभाव हुआ जो तुझपर
उसमें अब करले परिवर्तन ।
जीवन का यह पृष्ठ पलट, मन ।

(३)

यहीं नहीं यह कथा ख़तम है,
मन की उत्सुकता दुर्दम है,
चाह रही है देखे आगे,
ज्योति जगी या सोया तम है,
रोक नहीं तू इसे सकेगा,
यह अदृष्ट का है आकर्षण ।
जीवन का यह पृष्ठ पलट, मन !

चौअन

(१)

काल क्रम से—

जिसके आगे झंझा रुकते,
जिसके आगे पर्वत झुकते—
प्राणों का प्यारा धन-कंचन
सहसा अपहृत हो जाने पर
जीवन में जो कुछ बचता है,
उसका भी है कुछ आकर्षण।

(२)

नियति नियम से—

जिसको समझा सुकरात नहीं,
जिसको बूझा बुकरात नहीं—
क़िस्मत का प्यारा धन-कंचन
सहसा अपहृत हो जाने पर

जीवन में जो कुछ बचता है,
उसका भी है कुछ आकर्षण।

(३)

आत्म भ्रम से—

जिससे योगी ठग जाते हैं,
गुरु ज्ञानी धोखा खाते हैं—
स्वप्नों का प्यारा धन-कंचन
सहसा अपहृत हो जाने पर

जीवन में जो कुछ बचता है,
उसका भी है कुछ आकर्षण।

(४)

कालक्रम से, नियति-नियम से,
आत्मभ्रम से,
रह न गया जो, मिल न सका जो,
सच न हुआ जो,
प्रिय जन अपना, प्रिय धन अपना
अपना सपना,
इन्हें छोड़कर जीवन जितना,
उसमें भी आकर्षण कितना !

पचपन

यह नारीपन,
तू बंद किए अपने किवाड़
बैठा करता है इंतज़ार,
कोई आए,
तेरा दरवाज़ा खटकाए,
मिलने को बाहें फैलाए,
तुझसे हमदर्दी दिखलाए,
आँसू पोंछे औ' कहे, हाय, तू जग में कितना दुखी-दीन।

ओ नवचेतन !
तू अपने मन की नारी को,
अस्वाभाविक बीमारी को,
उठ दूर हटा,
तू अपने मन का पुरुष जगा,
जो बे-शर्माए बाहर जाए,
शोर मचाए, हँसे, हँसाए,
छेड़े उनको जो बैठे हैं मुँह लटकाए, उदासीन।

छप्पन

(१)

वह व्यक्ति रचा,
जो लेट गया मधुबाला की
गोदी मे सिर धरकर अपना,
हो सत्य गया जिसका सहसा
कोई मन का सुंदर सपना,
दी डुबा जगत की चिंताएँ
जिसने मदिरा की प्याली मे,
जीवन का सारा रस पाया
जिसने अधरों की लाली में,

मधुबाला की कंकण-ध्वनि में
जो भूला जगती का क्रंदन,
जो भूला जगती की कटुता
उसके आँचल से मूँद नयन,
जिसने अपने सब ओर लिया
कल्पित स्वर्गों का लोक बसा,
कर दिया सरस उसको जिसने
वाणी से मधु बरसा-बरसा ।

(२)

वह व्यक्ति रचा,
जो बैठ गया दिन ढलने पर
दिन भर चलकर सूने पथ पर,
खोकर अपने प्यारे साथी,
अपनी प्यारी संपति खोकर,
बस अंधकार ही अंधकार
रह गया शेष जिसके समीप,
जिसके जलमय लोचन जैसे
झंझा से हों दो बुझे दीप;

टूटी आशाओं, स्वप्नों से
जिसका अब केवल नाता है,
जो अपना मन बहलाने को
एकाकीपन में गाता है,
जिसके गीतों का करुण शब्द,
जिसके गीतों का करुण राग
पैदा करने में है समर्थ
आशा के मन में भी विराग ।

(३)

वह व्यक्ति बना,
जो खड़ा हो गया है तनकर
पृथ्वी पर अपने पटक पाँव,
डाले फूले वक्षस्थल पर
मांसल भुजदंडों का दबाव,
जिसकी गर्दन में भरा गर्व,
जिसके ललाट पर स्वाभिमान,
दो दीर्घ नेत्र जिसके जैसे
दो अंगारे जाज्वल्यमान,

जिसकी क्रोधातुर श्वासों से
दोनों नथने हैं उठे फूल,
जिसकी भौंहों में, मूछों में
हैं नहीं बाल, उग उठे शूल,
दृढ़ दंत-पंक्तियों में जकड़ा
कोई ऐसा निश्चय प्रचंड,
पड़ जाय वज्र भी अगर बीच
हो जाय टूटकर खंड-खंड !

सत्तावन

(१)

वेदना भगा,
जो उर के अंदर आते ही
सुरसा-सा बदन बढ़ाती है,
सारी आशा-अभिलाषा को
पल के अंदर खा जाती है,
पी जाती है मानस का रस
जीवन शव-सा कर देती है,
दुनिया के कोने-कोने को
निज क्रंदन से भर देती है;

इसकी संक्रामक वाणी को
जो प्राणी पलभर सुनता है,
वह सारा साहस-बल खोकर
युग-युग अपना सिर धुनता है;
यह बड़ी अशुचि रुचि वाली है
संतोष इसे तब होता है,
जब जग इसका साथी बनकर
इसके रोदन में रोता है।

(२)

वेदना जगा,
जो जीवन के अंदर आकर
इस तरह हृदय में जाय व्याप,
बन जाय हृदय होकर विशाल
मानव-दुख-मापक दंड-माप;
जो जले मगर जिसकी ज्वाला
प्रज्वलित करे ऐसा विरोध,
जो मानव के प्रति किए गए
अत्याचारों का करे शोध;

पर अगर किसी दुर्बलता से
यह ताप न अपना रख पाए,
तो अपने बुझने के पहले
औरों में आग लगा जाए;
यह स्वस्थ आग, यह स्वस्थ जलन
जीवन में सबको प्यारी हो,
इसमे जल निर्मल होने का
मानव-मानव अधिकारी हो !

अट्ठावन

(१)

भीग रहा है भुवि का आँगन ।
भीग रहे हैं पल्लव के दल,
भीग रही हैं आनत डालें,
भीगे तिनकों के खोतों में
भीग रहे हैं पंछी अनमन ।
भीग रहा है भुवि का आँगन ।

(२)

भीग रही है महल-झोपड़ी,
सुख-सूखे में महलों वाले,
किंतु झोपड़ी के नीचे हैं
भीगे कपड़े, भीगे लोचन।
भीग रहा है भुवि का आँगन।

(३)

बरस रहा है भू पर बादल,
बरस रहा है जग पर सुख-दुख,
सब को अपना-अपना, कवि को
सब का ही दुख, सब का ही सुख,
जग-जीवन के सुख-दुःखों से
भीग रहा है कवि का तन-मन।
भीग रहा है भुवि का आँगन।

उंसठ

तू तो जलता हुआ चला जा।
जीवन का पथ नित्य तमोमय,
भटक रहा इंसान भरा-भय,
पल भर सही, परग भर को ही
कुछ को राह दिखा जा।
तू तो जलता हुआ चला जा।

जला हुआ तू ज्योति रूप है,
बुझा हुआ केवल कुरूप है,
शेष रहे जब तक जलने को
कुछ भी तू जलता जा।
तू तो जलता जा, चलता जा।

जहाँ बनी भावों की क्यारी,
स्वप्न उगाने की तैयारी,
अपने उर की राख-राशि को
वहीं-वहीं बिखरा जा।
तू तो जल कर भी चलता जा।

साठ

मैं जीवन की शंका महान।
युग-युग संचालित राह छोड़,
युग-युग संचित विश्वास तोड़,
मैं चला आज युग-युग सेवित
पाखंड - रूढ़ि से बैर ठान।
मैं जीवन की शंका महान।

होगी न हृदय में शांति व्याप्त,
कर लेता जब तक नहीं प्राप्त,
जग-जीवन का कुछ नया अर्थ,
जग-जीवन का कुछ नया ज्ञान।
मैं जीवन की शंका महान।

गहनांधकार में पाँव धार,
युग नयन फाड़, युग कर पसार,
उठ-उठ, गिर-गिरकर बारबार
मैं खोज रहा हूँ अपना पथ,
अपनी शंका का समाधान।
मैं जीवन की शंका महान।

इकसठ

तन मे ताक़त हो तो आओ।
पथ पर पड़ी हुई चट्टानें,
दृढ़तर हैं वीरों की आनें,
पहले-सी अब कठिन कहाँ है—
ठोकर एक लगाओ।
तन में ताकत हो तो आओ।

राह रोक है खड़ा हिमालय,
यदि तुममें दम, यदि तुम निर्भय,
खिसक जायगा कुछ निश्चय है—
घूँसा एक लगाओ।
तन में ताक़त हो तो आओ।

रस की कमी नही है जग में,
बहता नही मिलेगा मग में,
लोहे के पंजे से जीवन
की यह लता दबाओ।
तन में ताक़त हो तो आओ।

बासठ

उठ समय से मोरचा ले।
जिस धरा से यत्न युग-युग
कर उठे पूर्वज मनुज के,
हो मनुज संतान तू उस-
पर पड़ा है, शर्म खाले।
उठ समय से मोरचा ले।

देखता कोई नहीं है
निर्बलों की यह निशानी,
लोचनों के बीच आँसू
औ' पगों के बीच छाले!
उठ समय से मोरचा ले।

धूलि धूसर वस्त्र मानव—
देह पर फबते नहीं हैं,
देह के ही रक्त से तू
देह के कपड़े रँगाले।
उठ समय से मोरचा ले।

तिरसठ

(१)

तू कैसे रचना करता है ?
तू कैसी रचना करता है ?
अपने आँसू की बूँदों में—

अविरल आँसू की बूँदों में,
विह्वल आँसू की बूँदों में,
कोमल आँसू की बूँदों में,
निर्बल आँसू की बूँदों में—

लेखनी ! डुबाकर बारबार,
लिख छोटे-छोटे गीतों को
गाता है अपना गला फाड़,
करता इनका जग में प्रचार।

(२)

इनको ले बैठ अकेले में
तुझ-से बहुतेरे दुखी-दीन
खुद पढ़ते हैं, खुद सुनते हैं,
तुझसे हमदर्दी दिखलाते,
अपनी पीड़ा को दुलराते,
कहते हैं, 'जीवन है मलीन,

यदि बचने का कोई उपाय
तो वह केवल है एक मरण।'

(३)

तू ऐसे अपनी रचना कर,
तू ऐसी अपनी रचना कर,
जग के आँसू के सागर में—

जिसमें विक्षोभ छलकता है,
जिसमें विद्रोह बलकता है,
जय का विश्वास ललकता है,
नवयुग का प्रात झलकता है—

तू अपना पूरा क़लम डुबा,
लिख जीवन की ऐसी कविता,
गा जीवन का ऐसा गायन,
गाए सँग में जग का कण-कण।

(४)

जो इसको जिह्वा पर लाए,
वह दुखिया जग का बल पाए,
दुख का विधान रचनेवाला,
चाहे हो विश्व - नियंता ही,
इसको सुनकर थर्रा जाए।

घोषणा करे इसका गायक,
'जीवन है जीने के लायक़,
जीवन कुछ करने के लायक़,
जीवन है लड़ने के लायक़,
जीवन है मरने के लायक़,
जीवन के हित बलि कर जीवन।'

चौंसठ

पंगु पर्वत पर चढ़ोगे !
चोटियाँ इस गिरि गहन की
बात करती हैं गगन से,
और तुम सम भूमि पर चलना
अगर चाहो गिरोगे
पंगु पर्वत पर चढ़ोगे !

तुम किसी की भी कृपा का
बल न मानोगे सफल हो ?
औ' विफल हो दोष अपना
सिर न औरों के मढ़ोगे ?
पंगु पर्वत पर चढ़ोगे !

यह इरादा नप अगर सकता
शिखर से उच्च होता,
गिरि झुकेगा ही इसे ले
जबकि तुम आगे बढ़ोगे।
पंगु पर्वत पर चढ़ोगे।

पैंसठ

गिरि शिखर, गिरि शिखर, गिरि शिखर !
जबकि ध्येय बन चुका,
जबकि उठ चरण चुका,
स्वर्ग भी समीप देख—
मत ठहर, मत ठहर, मत ठहर !
गिरि शिखर, गिरि शिखर, गिरि शिखर !

संग छोड़ सब चले,
एक तू रहा भले,
किंतु शून्य पंथ देख—
मत सिहर, मत सिहर, मत सिहर !
गिरि शिखर, गिरि शिखर, गिरि शिखर !

पूर्ण हुआ एक प्रण,
तन मगन, मन मगन,
कुछ न मिले छोड़कर—
पत्थर, पत्थर, पत्थर !
गिरि शिखर, गिरि शिखर, गिरि शिखर !

छाछठ

(१)

यह काम कठिन तेरा ही था,
यह काम कठिन तेरा ही है।

तूने मदिरा की धारा पर
स्वप्नों की नाव चलाई है,
तूने मस्ती की लहरों पर
अपनी वाणी लहराई है।
यह काम कठिन तेरा ही था,
यह काम कठिन तेरा ही है।

(२)

तूने आँसू की धारा में
नयनों की नाव डुबाई है,
तूने करुणा की सरिता की
डुबकी ले थाह लगाई है।
यह काम कठिन तेरा ही था,
यह काम कठिन तेरा ही है।

(३)

अब स्वेद-रक्त का सागर है,
उस पार तुझे ही जाना है,
उस पार बसी है जो दुनिया
उसका संदेश सुनाना है।
अब देख न डर, अब देर न कर,
तूने क्या हिम्मत पाई है !
यह काम कठिन तेरा ही था,
यह काम कठिन तेरा ही है।

सतसठ

बजा तू वीणा और प्रकार।
कल तक तेरा स्वर एकाकी,
मौन पड़ी थी दुनिया बाकी,
तेरे अंतर की प्रतिध्वनि थी तारों की झनकार।
बजा तू वीणा और प्रकार।

(३)

आज दबा जाता स्वर तेरा,
आज कँपा जाता कर तेरा,
बढ़ता चला आ रहा है उठ जग का हाहाकार।
बजा तू वीणा और प्रकार।

(२)

क्या कर की वीणा धर देगा,
या नूतन स्वर से भर देगा,
जिसमें होगा एक राग तेरा, जग का चीत्कार ?
बजा तू वीणा और प्रकार।

अठसठ

(१)

यह एक रश्मि—

पर छिपा हुआ है इसमें ही
ऊषा बाला का अरुण रूप,
दिन की सारी आभा अनूप,

जिसकी छाया में सजता है
जग राग-रंग का नवल साज।

यह एक रश्मि !

(२)

यह एक विंदु—

पर छिपा हुआ है इसमें ही
जल-श्यामल मेघों का वितान,
विद्युत बाला का वज्र गान,
जिसको सुनकर फैलाता है
जग पर पावस निज सरस राज।

यह एक विंदु !

(३)

वह एक गीत—

जिसमें जीवन का नवल वेश,
जिसमें जीवन का नव सँदेश,
जिसको सुनकर जग वर्तमान
कर सकता नवयुग में प्रवेश,
किस कवि के उर में छिपा आज ?

वह एक गीत !

उनहत्तर

जब-जब मेरी जिह्वा डोले।
स्वागत जिनका हुआ समर में,
वक्षस्थल पर, सिर पर, कर में,
युग-युग से जो भरे नहीं है
मानव के घावों को खोले।
जब-जब मेरी जिह्वा डोले।

यदि न बन सके उनपर मरहम,
मेरी रसना दे कम से कम
इतना तो रस जिसमें मानव
अपने इन घावों को धोले।
जब-जब मेरी जिह्वा डोले।

यदि न सके दे ऐसे गायन,
बहले जिनको गा मानव-मन;
शब्द करे ऐसे उच्चारण,
जिनके अंदर से इस जग के
शापित मानव का स्वर बोले।
जब-जब मेरी जिह्वा डोले।

सत्तर

(१)

तू एकाकी तो गुनहगार।
अपने प्रति होकर दयावान
तू करता अपना अश्रु पान,
जब खड़ा माँगता दग्ध विश्व
तेरे नयनों की सजल धार।
तू एकाकी तो गुनहगार।

(२)

अपने अंतस्तल की कराह
पर तू करता है त्राहि-त्राहि,
जब ध्वनित धरणि पर, अंबर में
चिर-विकल विश्व का चीत्कार।
तू एकाकी तो गुनहगार।

(३)

तू अपने में ही हुआ लीन,
बस इसीलिए तू दृष्टिहीन,
इससे ही एकाकी-मलीन,
इससे ही जीवन-ज्योति-क्षीण;
अपने से बाहर निकल देख
है खड़ा विश्व बाहें पसार।
तू एकाकी तो गुनहगार।

इकहत्तर

गाता विश्व व्याकुल राग ।
है स्वरों का मेल छूटा,
नाद उखड़ा, ताल टूटा,
लो, रुदन का कंठ फूटा,
सुप्त युग-युग वेदना सहसा पड़ी है जाग ।
गाता विश्व व्याकुल राग ।

वीण के निज तार कसकर
और अपना साधकर स्वर
गान के हित आज तत्पर
तू हुआ था, किंतु अपना ध्येय गायक त्याग ।
गाता विश्व व्याकुल राग ।

उँगलियाँ तेरी रुकेंगी,
बज नहीं वीणा सकेगी,
राग निकलेगा न मुख से,
यत्न कर साँसें थकेंगी;
करुण क्रंदन में जगत के आज ले निज भाग ।
गाता विश्व व्याकुल राग ।